पंचम अध्याय: कश्मीर केन्द्रित उपन्यास: शिल्प विधान

कश्मीर केन्द्रित उपन्यास: शिल्प विधान

किसी भी रचना के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। पहला, उस रचना में क्या कहा गया है और दूसरा, कैसे कहा गया है। रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से जो कहना चाहता है वह रचना की अंतर्वस्तु है और अपनी बात को वह जिस तरीके से कहता है वह रचना का शिल्प है। पाश्चात्य विद्वान मार्क शोरर अपने निबंध 'टेक्निक एस डिस्कवरी' में शिल्प के सन्दर्भ में लिखते हैं, "When we speak of technique, then, we speak of nearly everything. For technique is the means by which the writer's experience, which is his subject matter, compels him to attend to it; technique is the only means he has of discovering, exploring, developing his subject, of conveying its meaning, and, finally, of evaluating it."[1]

उपन्यासकार अपने उपन्यास के माध्यम से पाठकों के मन में जो भाव जगाना चाहता है वह उसकी लेखन-शैली के माध्यम से ही संभव हो पाता है क्योंकि किसी रचना में किए गए सफल शिल्पगत प्रयोग ही रचना को आकर्षक एवं रोचक बनाते हैं। कथ्य के साथ-साथ शिल्पगत नवीनता और मौलिकता उपन्यास को एक अलग पहचान देती है। किसी भी उपन्यास की सफलता कथावस्तु के साथ-साथ उसके शिल्प नियोजन पर भी निर्भर करती है। क्या कहा गया है यह तो महत्वपूर्ण होता ही है लेकिन जो कहा गया है वह पाठक पर कितना किस रूप में अपना प्रभाव डालता है, यह उस उपन्यास के शिल्प पर ही निर्भर करता है। इस प्रयास में संतुलन होना आवश्यक है क्योंकि संतुलन के अभाव में रचना अपने मूल उद्देश्य से हटकर केवल शिल्पगत प्रयोग बनकर ही रह जाएगी।

यदि हिंदी उपन्यास के विकासक्रम को देंखे तो उसमें शिल्प के स्तर पर बदलाव और नवीन प्रयोग निरंतर होते रहे हैं। उपन्यासों में होते शिल्पगत बदलाव और नवीन प्रयोगों की

आवश्यकता के संबंध में शांतिस्वरूप गुप्त का मानना है, "आज उपन्यास इतना समृद्ध और साथ ही संरचना की दृष्टि से इतना जटिल हो गया है कि उसको ठीक से समझने और उसका सम्यक् भावन और मूल्यांकन करने के लिए केवल सहज बुद्धि पर्याप्त नहीं है, उसकी शिल्प संबंधी बारीकियों और जटिलताओं को समझना भी आवश्यक है।"[2] यह कहा जा सकता है कि उपन्यासों का शिल्प समय और कथावस्तु की मांग के अनुसार बदलता रहा है क्योंकि उपन्यास में चित्रित समस्या जितनी जटिल होगी, जीवन में जितना उलझाव होगा, मन:स्थिति में जितना अंतर्द्वंद होगा उसे प्रकट करने के लिए उतने ही अधिक शिल्प अथवा शैलियों की आवश्यकता होगी। शिल्पगत प्रयोगों की नवीनता कश्मीर केन्द्रित उपन्यासों की लेखन शैली में भी देखने मिलता है।

उपन्यास की लेखन-शैली के अंतर्गत उसका शीर्षक भी आता है। उपन्यास में शीर्षक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। उपन्यास का शीर्षक कुछ शब्दों में न केवल उपन्यास की विषय-वस्तु का संकेत देता है अपितु वह पूरी कथा का प्रतिनिधित्व भी करता है। कश्मीर केन्द्रित उपन्यासों के शीर्षक भी विशेष अर्थ लिए हुए हैं, जो किसी-न-किसी रूप में कश्मीरी-जीवन और उस जीवन की समस्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैसे, 'शिगाफ़' "यानी एक दरार जो कश्मीरियत की रूह में स्थायी तौर पर पड़ गई है, जिसमें से धर्मनिरपेक्षता एक हद तक रिस चुकी है"[3] यह शीर्षक उपन्यास में चित्रित कश्मीरियों के मन एवं जीवन में पड़ने वाले 'दरार' की ओर संकेत करता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने 'शिगाफ़' उपन्यास में इस 'दरार' को अलग-अलग शिल्पों के माध्यम से चित्रित किया गया है। उपन्यास के खंड 'ला माँचा की राह पर' और 'वापसी' में 'ब्लॉग शैली' का प्रयोग किया गया है। उपन्यास की केंद्रीय चरित्र अमिता अपने 'ब्लॉग' में अपना परिचय देती हुई लिखती है, "उससे पहले कि मैं स्पेन में रहने के अपने अनुभव आपसे बाँटूँ, मुझे अपना परिचय दे देना चाहिए। मेरा नाम अमिता है। मैं भारतीय हूँ। एक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू परिवार से हूँ। मुझे स्पेन आए हुए एक साल बीत चुका है। आने के बाद ही से मैं यहाँ स्पेन के उत्तर में

पाम्पलोना के निकट बसे, एक छोटे शहर सैनसबैस्टियन में रह रही हूँ।"[4] इस परिचय के संबंध में नंद भारद्वाज लिखते हैं, "लेखिका इस संक्षिप्त विवरण के माध्यम से ही अपने केंद्रीय चरित्र और उसके जीवन संघर्ष का वह सारा ताना-बाना इतनी खूबसूरत अंदाज में प्रस्तुत कर गई है जिससे प्रस्तुत करने के लिए हिंदी कथा लेखन के महारथियों ने पृष्ठ के पृष्ठ भर दिए हैं"[5]

उपन्यास में 'ब्लॉग' के माध्यम से केवल अमिता के जीवन और उसकी विस्थापनजनित पीड़ा का ही चित्रण नहीं किया गया है बल्कि उसके 'ब्लॉग' पर अपनी प्रतिक्रियाओं के माध्यम से अन्य पात्र भी इस पीड़ा से जुड़ते हैं और अपने विचार रखते हैं। 'ब्लॉगजनित' संवाद में ऐसे कई पात्र सामने आते हैं जिनका अस्तित्व केवल 'ब्लॉग' तक ही सीमित रहता है। यहाँ 'ब्लॉग' शैली का चुनाव अनायास नहीं है बल्कि पात्र की स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस शिल्प का चुनाव किया है। अमिता की पीड़ा से अन्य लोगों की पीड़ा को जोड़ने के लिए 'ब्लॉग' को माध्यम बनाया गया है। संभवत: मनीषा कुलश्रेष्ठ चाहती हैं कि अमिता की पीड़ा से एक बड़ा जन-समुदाय जुड़े। चाहे वह दुनियाँ के किसी भी कोने में रहता हो। इतने बड़े फलक पर संवाद 'ऑनलाइन' माध्यम से ही संभव है। इसलिए यहाँ 'ब्लॉग' शैली का चयन किया गया है और अमिता के 'ब्लाग' पर आनेवाली प्रतिक्रिया और साझे किए गए अनुभवों द्वारा यह उद्देश्य सफल हुआ है।

'चिनार की दो पत्तियाँ' खंड में अमिता की बचपन की सहेली यास्मीन की डायरी के माध्यम से यास्मीन का परिचय पाठकों से होता है। यास्मीन जीवित नहीं है लेकिन संभवत: लेखिका चाहती हैं कि वह अपना सच स्वयं कहे, जिसके लिए उन्होंने यास्मीन की 'डायरी' को माध्यम बनाया है। अमिता के कश्मीर जाने के पहले ही उसकी दोस्त यास्मीन एक बम धमाके में मारी जाती है। इस खंड में यास्मीन से अमिता की मुलाकात उसकी डायरी के माध्यम से ही होती है, जो यास्मीन के पिता उसे देते हैं। यास्मीन की डायरी में "बहुत तरह के खानों की विधियाँ, बाज़ार से लानेवाली चीजों की फेहरिस्त...कहीं-कहीं दिल के फूटे हुए छालों से बहती दास्तां और हल्दी-तेल के दाग़ों

से बना एक औरत की ज़िन्दगी के बहुत से पहलुओं से बने एक कोलाज की तरह थी यह डायरी"[6] वसीम जैसे दहशतगर्द से प्रेम, असुरक्षित माहौल के कारण अनमेल विवाह, गरीबी एवं बदहाली और अंत में किसी बम धमाके में हुई मौत— यह नियति केवल यास्मीन की नहीं है। इसलिए यास्मीन की डायरी उसकी होकर भी कई कश्मीरी स्त्रियों की कहानी बन जाती है। इस खंड में डायरी शैली के माध्यम से यास्मीन जीवित न होकर भी 'मैं' शैली में उपन्यास के इस खंड में उपस्थित रहती है।

'आत्मालाप' खंड में वसीम, जो दहशतगर्द है, के अंतर्द्वंद को दिखाने के लिए 'आत्मालाप' शैली को माध्यम बनाया गया है, "कौन है, यह जो उससे अक्सर बात करता है? वह अचानक अपने पास एक हाथ की दूरी पर किसी अजनबी की उपस्थिति से सजग हो उठा...लड़ाई खत्म हो रही है। आओ, डरो मत।" वह उसका हाथ थामकर कहता है। "लड़ाई खत्म हुई है या नहीं, पता नहीं...मगर हम दोनों ही घायल हैं।"[7] यहाँ वसीम की 'मैं' की 'मैं' से लड़ाई है। जहाँ वह आतंक की आवश्यकता और उसकी निरर्थकता पर स्वयं से ही उलझता है। 'मैं' के इस अंतर्द्वंद से दो विपरीत विचारधाराओं के अंतर्द्वंद को दिखाया गया है। मनीषा कुलश्रेष्ठ कश्मीर में युद्ध की विभीषिका और अमन की आवश्यकता पर सीधे-सीधे न लिखकर वसीम के आत्मालाप के द्वारा उसे सामने रखती हैं।

'जुलेख़ा का मिथक' खंड में 'अखबार की कतरनों' के सहारे जुलेखा की मिथक-कथा बुनी गई है। जुलेखा अपने कपड़ों में छिपाए विस्फोटक सामग्री में हुए धमाके में मारी जाती है। जुलेखा यास्मीन की तरह अपने जीवन के बारे में कुछ नहीं कहती बल्कि खबरों, अखबारों में छपे चित्र और लोगों द्वारा सुनाई जानेवाली कहानियाँ ही उसे जानने का माध्यम बनती हैं। इसलिए इस खंड को मिथक का नाम दिया गया है। जुलेखा से अमिता का परिचय अख़बारों में छपी ख़बरों और चित्रों के माध्यम से होता है। अमिता कहती है "उस रात अखबार की कतरनों को मैंने शब्द-शब्द

पढ़ डाला। विश्लेषण का रेशा-रेशा अर्थ निकाला और जुलेख़ा, मेरे मन में, धीरे-धीरे, एक कोलाज का रूप लेने लगी।"[8] इस 'कोलाज' के माध्यम से जुलेखा इस उपन्यास में एक पात्र के रूप में उपस्थित होती है।

'शिगाफ़' उपन्यास की यह भाषागत विशेषता है कि कई स्थानों पर परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन न कर केवल सांकेतिक शैली में पूरी बात कही गई है। 'चिनार की यह दो पत्तियाँ' खंड में केवल दो सहेलियों की नहीं बल्कि अलग-अलग परिस्थितियों की भुक्तभोगी दो कश्मीरी स्त्रियों के जीवन की विडम्बनाओं का बहुत ही कम शब्दों में चित्रण किया गया है, "चिनार की दो पीली पत्तियाँ एक-दूसरे का पीछा करती, हवा में गोल-गोल चक्कर काट रही हैं। कुछ पलों बाद उनमें से एक चुपचाप कब्र पर आकर गिर जाती है, दूसरी पेड़ पर लटके मकड़ी के जाले में उलझ जाती है।"[9] इसमें से एक पत्ती अमिता है जो कश्मीर से दूर जाकर भी अतीत में उलझी है वहीं दूसरी पत्ती यास्मीन है जो एक लंबे संघर्ष के बाद सारी उलझनों को बहुत पीछे छोड़ कब्र में सोई है।

'शिगाफ़' उपन्यास में कश्मीरी और स्पेनीश भाषा का प्रयोग भी मिलता है। जैसे, "प्रज़नैव न? (पहचाना नहीं)...'लो पसादो-पसादो।' जिसका अर्थ है 'जो बीत गया, वह अतीत हुआ।' "[10] पहली पंक्ति जहाँ कश्मीरी भाषा की है वहीं दूसरी स्पेनिश भाषा की। उपन्यास में कश्मीरी भाषा का प्रयोग स्थानीयता को बनाए रखने के लिए किया गया है तो स्पेनिश भाषा को प्रयोग कथावस्तु में स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए। अमिता स्पेन में रहती है, वहाँ स्पेनिश भाषा सीखती है, उसके स्पेनिश दोस्त भी हैं अत: उसके बोलचाल में स्पेनिश भाषा के शब्दों का आना सहज है। इसी सहजता को बनाए रखने की लिए स्पेनिश भाषा का प्रयोग भी इस उपन्यास में किया गया है।

इस उपन्यास में अभिव्यक्ति हेतु यदा-कदा काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। जैसे, "मेरा माज़ी/मेरी तन्हाई का ये अन्धा शिगाफ़/ ये के साँसों की तरह मेरे साथ चलता रहा/ किसी की

ओक पा लेने को लहू बहता रहा..."[11] साथ ही उपन्यास के हर खंड की शुरुआत किसी गीत, नज्म या शायरी से होती है। उपन्यास पढ़ते हुए यह प्रतीत होता है जैसे कथा के साथ-साथ गीत भी चल रहे हों।

'शिगाफ़' उपन्यास शिल्प की दृष्टि से वैविध्यता लिए हुए है। ये शैलियाँ उपन्यास में आरोपित या केवल सज्जा के लिए नहीं हैं बल्कि अभिव्यक्ति की जीवन्तता के लिए हैं। 'शिगाफ़' उपन्यास में प्रयुक्त शिल्प की यह विविधता उपन्यास में एकरसता नहीं आने देती है।

'एक कोई था कहीं नहीं-सा' उपन्यास का शीर्षक उपन्यास के इस गीत से लिया गया है जिसकी पहली पंक्ति इस उपन्यास का शीर्षक है- "एक कोई था/ कहीं नहीं-सा।/ उसके हुए जी गबरू तीन/ शिकार पे निकले वो एक दिन/ दो पे थीं पर इक कमान बिन जो कमान बिन/ किये उसी ने शिकार तीन/ पहुँचते-पहुँचते/ जहाँ वो पहुँचे/ वहाँ मिले उन्हें मकान तीन/ दो में थी पर इक था छत बिन/ जो था छत बिन/ उसमें पाए चूल्हे तीन/ दो में थी पर इक था लौ बिन/ जो था लौ बिन/ मिलीं वहीं पे हंडिया तीन/ दो में थे पर इक पेंदे बिन/ जो पेंदे बिन/ पके उसी में शिकार तीन/ शिकार खाया/ शोरबा बाँधा कमर से/पहुँचते-पहुँचते जहाँ पहुँचे/मिलीं वहीं उन्हें नदियाँ तीन/दो में था पर इन पानी बिन/जो पानी बिन/उसी में डूबे गबरू तीन।"[12] यह गीत उपन्यास की मूल संवेदना व्यक्त करता है।

मधुरेश इस उपन्यास के शीर्षक के संबंध में लिखते हैं- "मीरा कांत का उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं सा' अपनी प्रकृति में एक पीरियड नावेल है, जो उस कश्मीर को केंद्र में रखकर लिखा गया है, जो कभी था और अब नहीं है...मीरा कांत मूलतः कश्मीर की हैं। एक साझा सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन वाले कश्मीर का ध्वंस उन्हें भावात्मक रूप में तोड़ता है और इतिहास एवं स्मृति के सहारे वे एक ऐसे कश्मीर की रचना करती हैं, जो कभी सचमुच था, लेकिन अब जिसकी कल्पना भी दुष्कर है।"[13] मधुरेश का यह मानना है कि उपन्यास के शीर्षक में आया

'कोई' शब्द कश्मीर के लिए है। उपन्यास में जगह-जगह कश्मीर में हुए बदलाव के प्रति चिंता और क्षोभ व्यक्त किया गया है। शबरी के सहारे मीरा कांत बार-बार अतीत में लौटकर यह तुलना करती है कि कश्मीर क्या था और क्या हो गया है। 'एक कोई था कहीं नहीं सा' शीर्षक विस्थापित कश्मीरी पंडितों की ओर भी संकेत करता है, जो कश्मीर में न होकर भी वहीं हैं और जहाँ हैं वहाँ होकर भी वहाँ नहीं है। उपन्यास की शबरी कश्मीर से विस्थापित होकर दिल्ली आती है लेकिन वह दिल्ली में रहते हुए भी अपनी स्मृतियों के माध्यम से कश्मीर में ही होती है। "शबरी स्मृतियों को गर्मियों में सर्दियों के ऊनी कपड़ों की तरह और सर्दियों में गर्मियों के सूती कपड़ों की तरह तहा-तहा कर ट्रंकों में क़रीने से रखती चली जाती थी"[14] और रखने के इस क्रम में उसका समूचा अस्तित्व दो भागों में बंट जाता है जहाँ उसका शरीर दिल्ली में है और आत्मा कश्मीर में।

इस उपन्यास में जब मीरा कांत विस्थापनजनित पीड़ा का चित्रण करती हैं तो उस पीड़ा को दिखाने के लिए नए-नए उदाहरणों को लाती है। उपन्यास की जया जब एक खबर में 'अर्जेंटीना में स्थित साल्ट्रा के म्यूज़ियम में रखी ममी' को देखती है तो वहाँ उसका यह आत्मालाप सामने आता है कि व्यक्ति के मन में कितना कुछ दफन हो जाता है और "एक ममी की शक्ल ले लेता हो। हम कश्मीर में सब कुछ छोड़कर आ गये पर क्या मेरे हिस्से का एक छोटा कश्मीर मेरे भीतर ऐसे ही दफ्न होकर ममी नहीं बन गया है? और मेरी ही तरह जाने किस-किस के भीतर हो ये ममी! फिर हमें तो पम्प के ज़रिये बर्फीली हवा छोड़कर उस ममी को सुरक्षित रखने की ज़रूरत भी नहीं होती। वह भीतर फैली बर्फ़ में सुरक्षित है और रहेगा।"[15] यहाँ जया के आत्मालाप द्वारा विस्थापित कश्मीरी पंडितों की उस व्यथा को दिखाया है जिससे वह विस्थापन के वर्षों बाद भी मुक्त नहीं हो पाए हैं। यहाँ 'ममी' एक प्रतीक है। जिस प्रकार 'ममी' को ताबूत में बंद कर उसे वर्षों तक सुरक्षित रखने हेतु तमाम जतन किए जाते हैं, उसी प्रकार विस्थापन का यह दंश भी कश्मीरी पंडितों के हृदय में बहुत गहरे धंसा है, लेकिन इसमें अंतर यह है कि अपनी भीतर दबी इस पीड़ा को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। यह पीड़ा उनकी पहचान

के साथ-साथ उनके वजूद से भी जुड़ गई है। जिससे स्वयं को अलग कर पाना कश्मीरी पंडितों के लिए संभव नहीं है।

उपन्यास में जहाँ-जहाँ मानव मन के भीतर छुपे अमानवीय भावों का प्रसंग आता है वहाँ भाषा का तेवर बदल जाता है- "इस दुनिया की हर चीज, हर जज्बा जाने क्यों सत्ता और अर्थ पर आधारित है। उसे लगता कि दरअसल इंसान के अन्दर का दरिन्दा मरता नहीं है। हम उस दरिन्दे की देह पर मूल्यों का फैरन पहनाकर, सिर पर नैतिकता का दस्तार रखकर किसी तरह घरेलू बनाने की कोशिश करते हैं। मगर जरा-सा उकसावा व अवसर मिलते ही वह अपना फेरन निकाल फेंकता है, दस्तार दूर पटकता है और अलिफ नंगा होकर अपने खूँखार दाँत कटकटाने लगता है।"[16] इस प्रसंग में मानव-मन के भीतर छुपे उन आदिम भावों को दिखाया गया है जो केवल दबे होते हैं खत्म नहीं होते। यहाँ इन भावों का मानवीकरण कर उन्हें 'दरिन्दे' का रूप दिया गया है। जिसे मनुष्य नैतिकता और मानवता के आवरण में छुपाकर अपने भीतर रखता है लेकिन जिस दिन उसे अवसर मिलता है और उसे यह आभास होता है कि इस परिस्थिति में उसके द्वारा किया गया कुकृत्य दुनिया के सामने नहीं आएगा, उस दिन वही 'दरिंदा' मनुष्यता का चोला उतार अपने बर्बर रूप में सामने आ जाता है।

उपन्यास में पात्रों की मन:स्थिति के चित्रण हेतु बिम्बों का प्रयोग भी किया गया है। जैसे शबरी के जीवन को इन पंक्तियों के माध्यम से चित्रित किया गया है, "उसका जीवन चूल्हे के कड़ुवे धुँए से त्रस्त आँखों-सा हो गया था। वे कड़ुवी नम आँखें न खोलते बनती थीं न बन्द करते। बस चूल्हा जल रहा था, अपना काला धुँआ छोड़ता। जलता चला जा रहा था और शबरी उसके सामने सिर झुकाए बैठी उसकी जलती लकड़ियाँ सँभाल रही थी मानो।"[17] जिस तरह चूल्हे से निकलनेवाले धुएं से उस चूल्हे के पास बैठेनेवाले की आँखें न बंद हो पाती हैं और न खुल पाती हैं, यानी दोनों ही स्थितियाँ उसके लिए तकलीफदेह होती हैं, शबरी का जीवन भी विवाह के बाद वैसा ही हो गया था। मीरा कांत ने यहाँ शबरी के जीवन को चित्रित करने हेतु चूल्हे का उदाहरण यूँ ही नहीं

लिया है बल्कि विवाह के बाद यह चूल्हा ही उसकी दुनियाँ बन गई थी और उसी के सामने बैठे रहना उसकी नियति। चूल्हे के भीतर सुलगती लौ की तरह उसकी जिंदगी भी धीरे-धीरे सुलग रही थी, जलकर राख हो रही थी लेकिन उसकी इस स्थिति पर ध्यान देने वाला कोई नहीं था। यहाँ तक कि उसके पति समसार चंद जू के लिए भी वह एक देह थी। जिसके दो कर्तव्य थे एक चूल्हा फूंकना दूसरा पति को संतुष्ट करना। पहला कर्तव्य तो शबरी निपुणता से निभा रही थी लेकिन दूसरे कर्तव्य के संबंध में शबरी के प्रति उनके विचार थे, "क्या बर्फ की गुड़िया पल्ले पड़ी है। तुझे देखकर तो अलाव भी ठंडा हो जाए। हट परे।...मुझे नहीं पता था कि केदारनाथ अपना कोहेशीन (बर्फ़ का पहाड़) मेरे घर में पटक रहा है..."[18] समसार चंद जू शबरी से उम्र में काफी बड़े थे। शबरी उनमें अपने पिता का रूप देखती थी लेकिन वह उससे पत्नी जैसा व्यवहार चाहते थे। शबरी की ओर से कोई प्रतिक्रिया न होते देख वह उसे 'बर्फ की गुड़िया' कहकर उसकी अवहेलना करते हैं। यहाँ स्त्री की अनिच्छा पर पितृसत्तात्मक मानसिकता की प्रतिक्रिया को दिखाने हेतु 'बर्फ की गुड़िया' प्रतीक का प्रयोग किया गया है।

इस उपन्यास में सहजता को बनाये रखने हेतु कश्मीरी भाषा के शब्दों को भी शामिल किया गया है। जैसे, "लिवुन (उत्सव के शुभारम्भ की रस्म का दिन)...मेरा तोता चला यारबल (नदी किनारे घाट पर)"[19] साथ ही नारे वाली भाषा का प्रयोग भी किया है। कबायली हमले के दौरान कश्मीरी छोटे-छोटे समूहों में बारी-बारी से पहरा देते थे ताकि लोग कम-से-कम भयभीत हो और ठण्ड में इन नारों से पहरा देनेवालों का जोश भी बना रहे। "सर्द रातों में कार्यकर्ताओं की टोलियाँ गली-गली में चक्कर लगाती बोलती जातीं- हमलवार ख़बरदार/हम कश्मीरी हैं तैयार।"[20] इस तरह के भाषिक प्रयोग से न केवल रोचकता की वृद्धि हुई है अपितु कश्मीरी जीवन भी जीवंत हो उठा है।

चन्द्रकान्ता का उपन्यास 'कथा सतीसर' लगभग 600 पृष्ठों में लिखा गया वृहद उपन्यास है। कश्मीर-जनजीवन की समस्याओं को चित्रित करने वाले इस उपन्यास का शीर्षक कितना सार्थक है यह प्रश्न चन्द्रकान्ता ने स्वयं भी उठाया है, " 'सतीसर' शीर्षक क्यों? प्रश्न उठ सकता है।

आखिर वैश्वीकरण के इस दौर में पौराणिक-ऐतिहासिक नाम? जबकि हम दम तोड़ चुके इतिहास को मंच से धकेल चुके हैं?"[21] दरअसल कश्मीर की आधुनिक समस्या का कारण बताने के लिए चन्द्रकान्ता ने यह शीर्षक उस प्राचीन कथा से लिया है जहाँ हजारों वर्ष पहले 'सतीसर' झील थी। उस झील में रहने वाले जलोद्भव राक्षक ने वहाँ के निवासियों जैसे-नाग, भुट, निषाद आदि को त्रस्त करके रखा था। तब कश्यप ऋषि के प्रयास से जलोद्भव को मारा गया एवं झील का सारा पानी बहा दिया गया और वहीं से कश्मीर घाटी निकली। उपन्यास में इस प्रसंग के माध्यम से चन्द्रकान्ता ने 'मेटाफर' गढ़ा है। कश्मीर की इस प्राचीन समस्या को वर्तमान से जोड़ते हुए यह उम्मीद व्यक्त की है कि जैसे हजारों वर्ष पहले यह प्रदेश राक्षस के प्रकोप से मुक्त हुआ था वैसे शायद अब भी हिंसा, दहशत और आतंक से यह घाटी मुक्त हो जाएगी। उपन्यास में चित्रित यह उम्मीद ही इस शीर्षक का आधार है।

इस उपन्यास में पूर्वदीप्त शैली का प्रयोग किया गया है। उपन्यास का आरंभ न्यू जर्सी में रहनेवाली लल्ली से होता है जो वहाँ होकर भी नहीं है। उसकी यादें उसे बार-बार अतीत में ले जाती हैं। हालाँकि लल्ली ने इस सच को स्वीकार लिया था कि उसके लिए अब कश्मीर लौटना संभव नहीं। फिर भी वह बार-बार अपने अतीत में चली जाती है जो उसे उसके वर्तमान से जुड़ने नहीं देता है।

'कथा सतीसर' उपन्यास में चन्द्रकान्ता जब ऐतिहासिक घटनाओं को प्रस्तुत करती हैं तो उपन्यास की भाषा अधिकांशत: विवरणात्मक हो जाती है। जैसे, "तेरह सौ ईस्वी के आसपास कश्मीर के राजाओं का नैतिक पतन हो चुका था। हत्या, हिंसा, षड्यन्त्र, गद्दी हथियाने की जालसाज़ियों ने राज्य को कमज़ोर कर दिया था। इसी समय तेरह सौ उन्नीस ईसवी में दुलचू या जुलिच नाम के आक्रमणकारी ने वादी में आतंक मचाया। हत्या, तोड़-फोड़, आगज़नी! राजा सहदेव किश्तवाड़ भाग गया। दुलचू ने श्रीनगर में आग लगा दी और हज़ारों हिन्दुओं को दास बनाकर अपने साथ ले गया। लेकिन वापस लौटते समय वह पहाड़ों के बीच बर्फानी तूफान में

फँस गया और सभी बन्दी भट्टों के समेत बर्फ में उसकी भी कब्र बन गई। इसी से उस जगह को 'भट्टगजिन' यानी भटों का तन्दूर कहा जाता है।"[22]

इस उपन्यास में कश्मीरी जीवन में बदलती परिस्थितियों का प्रतीकों के माध्यम से विश्लेषण भी किया गया है, जैसे "यह आतश चिनार का आतश नहीं है, ज्वालामुखी का सुलगता लावा है, जो धीरे-धीरे उबल रहा है, कब कहाँ फट जाएगा, कोई नहीं जानता, मौसम के जानकार भी नहीं।"[23] जिस तरह ज्वालामुखी भीतर ही भीतर सुलगता रहता है और एक दिन अचानक ही फट जाता है वैसे ही कश्मीर में परिस्थितियाँ अचानक से ख़राब नहीं हुई थी बल्कि उसकी पृष्ठभूमि लंबे समय से बन रही थी। क्रोध, अविश्वास और दरार एक-दूसरे के प्रति लोगों के मन में दबी हुई थी, अवसर मिलते ही उजागर होने लगी।

'कथा सतीसर' उपन्यास में पात्रों की अधिकता है। उपन्यास में आए सभी पात्र किसी विशेष परिस्थिति में मानव-मन की किसी विशेष मन:स्थिति को दर्शाते हैं। जैसे, उपन्यास का पात्र रहमान कश्मीर की आज़ादी की मुहीम में शामिल होना चाहता है, जिसका कारण है, "रहमाना उम्रभर ताँगा ही चलाता अगर इस बीच आज़ादी का नारा न उठता। अब वह बाल-बच्चोंवाला ज़िम्मेदार आदमी बन गया था। पर मोजी का फटा फिरन और राजरेन्यी के रेशम रफल का फर्क उसके ज़ेहन के किसी कोने को बराबर खुरच रहा था। यह भी एक वजह थी कि वह आज़ादी की मुहिम में शामिल हो गया।"[24] रहमान जू का आज़ादी की मुहीम में शामिल होने का कारण केवल धर्म नहीं था बल्कि आर्थिक असामानता भी थी। रहमान जू को इस आर्थिक असामानता का एहसास किसी राजनीतिक घटना या भाषण से नहीं बल्कि अपनी माँ के उस फटे फिरन को देखकर होता है जिसे देखते हुए उसका बचपन गुजरा था। रहमान जू की माँ अशी दाई राज्यरैन्यी के यहाँ काम करती थी। रहमान के मन को बचपन से यह फर्क कचोटता थी कि उसकी माँ का फिरन पैबंद लगा है और राजरैन्यी का फिरन रेशम का है। कश्मीर की आज़ादी की लड़ाई में जब आर्थिक असामानता का मुद्दा उठता है तो रहमान उस मुहीम से ख़ुद को दूर नहीं रख पाता।

'कथा सतीसर' उपन्यास में कथ्य के साथ-साथ शिल्प में भी विविधता देखी जा सकती है। जैसा कि चन्द्रकान्ता स्वयं लिखती हैं, "मैंने इस कथा में इतिहास, भूगोल ही नहीं, लोकगीत, कथा, कहानियाँ, मिथ, लेजेंड आदि भी समय के सच के साथ गूँथ दिए हैं, कश्मीरी भाषा के मुहावरों, लोकोक्तियों और लोकरंगों की जीवन्तता को बरकरार रखते हुए।"[25]

इस उपन्यास में गद्य और काव्य एक साथ चलते हैं। उपन्यास में न केवल कश्मीरी भाषा के लोकगीतों को शामिल किया गया है बल्कि कश्मीर की मार्मिक त्रासदी, रक्त रंजित यथार्थ और अथाह पीड़ा को भी काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। जैसे, "जहाँ माँएँ पनघटों पर धो रही हैं/ खून से रंगे/अपने दूल्हा बेटों के पोशाक/ जहाँ दुल्हनों के सुहाग जोड़ों में लग गई है आग/ जहाँ रोती जा रही हैं औरतें और वितस्ता निःसंग बहती जा रही है।"[26]

इस उपन्यास की रचना-प्रक्रिया में कश्मीरी भाषा के वाक्यों जैसे-"बालन प्यठ छि वावमाल पकान! बोठ प्ययि रटुन। (पहाड़ों के ऊपर बादलों में आँधी के आसार नज़र आ रहे हैं। किनारा लेना पड़ेगा।)"[27], विवाह के अवसर पर गाया जाने वाला लोकगीत "योर यलि गच्छहम दछिन्य किन्य दअर छय/ तथ्य अन्दर हयर छह शीलह मारान...!(यहाँ से जाकर जब ससुराल पहुँचोगे तो दाईं ओर देखना, वहीं खिड़की के पास तुम्हारी मैना सजी-धजी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी।)"[28] के साथ ही कहावतों और लोककथाओं को भी शामिल किया गया है। जैसे, कश्मीरी भाषा में एक कहावत है- "जेठेव नर्यव खेयिव साल" (लम्बी बाँहों भोज खाओ)"[29] यह कहावत शेख नुरुद्दीन ऋषि से संबंधित है। इससे संबंधित लोककथा, जो कश्मीरी जन-जीवन में प्रचलित है, इस प्रकार है- 'एक बार शेख नुरुद्दीन ऋषि एक दावत में फटे कपड़े पहनकर चले जाते हैं। उनके कपड़े देख सभी उन्हें भिखारी समझकर बाहर निकाल देते हैं लेकिन दुबारा वह जब अच्छे कपड़े पहनकर जाते हैं तो उन्हें दावत में शामिल होने दिया जाता है। तब वह कहते हैं 'लंबी बाँहों भोज खाओ' जिसे सुनकर सभी शर्मिंदा हो जाते हैं।' इस लोककथा का निहितार्थ है कि यह सामाजिक विडंबना ही है जहाँ मोल व्यक्ति का नहीं कपड़ों का होता है। इस उपन्यास में लोक

कथाओं की अधिकता है। जैसे इस कथा के साथ ही 'बंबुर-लोलार' की कथा भी है जहाँ वे दोनों मिल नहीं पाते और अंतत: अपने प्राण त्याग देते हैं तथा 'नागराय-हिमाली' की प्रेमकथा को भी शामिल किया गया है।

'कथा सतीसर' उपन्यास में कश्मीरी भाषा के शब्दों के प्रयोग से जहाँ संवाद में सहजता आती है वहीं इन गीतों एवं कथाओं एवं कहावतों के माध्यम से कश्मीर के लोक-जीवन का, उनकी मान्यताओं और सोच का भी परिचय भी मिलता है। उपन्यास में आए कश्मीरी भाषा के शब्दों के अर्थ 'फूटनोट' में दिए हैं ताकि गैर कश्मीरी पाठक भी प्रयुक्त भाषा की संवेदना से जुड़ सके और उसे सामान्य शब्द या वाक्य मानकर आगे न बढ़ जाए, अपितु उसके अर्थ को उसके पूरे सन्दर्भ के साथ समझे।

'ऐलान गली ज़िन्दा है' उपन्यास का शीर्षक 'ऐलान गली' के नाम पर रखा गया है। उपन्यास की कथा गली से आरंभ होकर गली पर ही ख़त्म हो जाती है। इस उपन्यास में पात्र तो कई हैं लेकिन केंद्र में 'ऐलान गली' है, जिसके इर्द-गिर्द उपन्यास के सभी पात्र घूमते रहते हैं। उपन्यास में ऐलान गली का चित्रण बड़े मनोयोग से किया गया है, जहाँ गली की भी अपनी एक कथा है जो उसके नामकरण से जुड़ी है- 'खिचड़ी अमावस्या की रात जब अरुंधती अपने घर में अपने बच्चों के साथ अकेली होती है तब उसे घर में किसी चोर के आने की आहट मिलती होती है। अरुंधती साहस कर उस चोर पर हमला कर देती है और उसके तब तक उसके बेटे जवा और मखना शोर मचा देते हैं। इस आघात से घबराकर चोर हड़बड़ी में खिड़की को दरवाज़ा समझ तीन मंजिल से नीचे कूद जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। इस घटना के बाद से यह गली चोरों के आतंक से हमेशा के लिए मुक्त हो जाती है', "तब से अब तक दसेक वर्ष हो ही गए। किसी चोर के दर्शन यहाँ वालों को नहीं हुए। लोग मजे से रहने लगे। और तभी से...इस गली का नाम 'ऐलान गली' हो गया।"[30] उपन्यास में चित्रित नामकरण के प्रसंग द्वारा एक ओर जहाँ कथा में ऐलान गली की केन्द्रीयता स्पष्ट हो जाती है वहीं दूसरी ओर शीर्षक की सार्थकता भी सिद्ध होती है।

उपन्यास त्योहारों और रीति-रिवाजों के चित्रण के दौरान भाषा अधिकांशत: वर्णनात्मक हो जाती है। जैसे, "वह एक यज्ञ अमावस्या, यानी खिचड़ी अमावस्या की रात थी। गृहस्थ घरों में मूँग चावल की, खूब-सा घी डालकर, स्वादिष्ट खिचड़ी बनती है इस दिन। साथ में मछली का झोल, मीट का कलिया, रोगनजोश, वगैरह-वगैरह, अपनी-अपनी रीत के अनुसार। गलीवालों ने भी अपनी-अपनी सामर्थ्य के हिसाब से खिचड़ी बनाई। संसारचन्द की धर्मपत्नी अरुन्धती ने भी मछली, मीट, आचार की फाँक वगैरेह से सजी खिचड़ी घास की ईंगुरीनुमा पत्तल पर धरकर दालान में रख दी। घर के किसी कोने अन्तरे में घास की पत्तलों पर खिचड़ी, गृहदेवता के लिए परोसी जाती है। कहते हैं इस रात यक्षराज या गृहदेवता सभी घरों का चक्कर लगाते हैं, जिस घर में सुच्ची खिचड़ी पाते हैं, उस घरवालों से खुश होकर वे प्रसाद पाते हैं और बदले में लक्ष्मी को भेज देते हैं।"[31] वहीं जब कश्मीर के सौन्दर्य का चित्रण होता है तब भाषा बिम्बात्मक हो जाती है, जैसे- "ऐलान गली में शाम उतर आई है। एक-दूसरे का सहारा लिये खड़े मकानों के बर्फ ढके सिरों पर ढलते सूरज का अक्स पल-भर के लिए ठहर-सा गया है, ज्यों वितस्ता के बाढ़वाले पानी में गोता लगाए पक्के सयाने सिर गलीवालों के कारनामों पर अनुभवी बुजुर्ग नजर डालने रुक गए हों।"[32]

'ऐलान गली ज़िन्दा है' उपन्यास में कश्मीरी भाषा में गाए जानेवाले गीतों का प्रयोग भी किया है। जैसे बच्चे के नामकरण के अवसर पर गाया जानेवाला गीत- "सतिमे दोहय सौंदर करमय, वाजस, द्युतिमय पाने फरमाश...(सातवें दिन पहला स्नान किया और रसोइयों को आप ही बुला लाई।)"[33] यह प्रयोग उपन्यास में स्थानीयता का बोध तो कराता ही है साथ ही उस जीवन से जुड़ाव का संकेत भी देता है जो कथा के केंद्र में है। चन्द्रकान्ता ने इस उपन्यास में कश्मीरी भाषा के वाक्यों का अर्थ 'कथा सतीसर' उपन्यास की तरह 'फुटनोट' में नहीं बल्कि कोष्टक में दिया है।

इस उपन्यास में आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। जिसके माध्यम से चन्द्रकान्ता ने उस आम जीवन का चित्रण किया है जो अपनी तमाम खूबियों और कमियों के साथ उपन्यास

में उपस्थित होता है। अत: उपन्यास में कहीं-कहीं गालियों अथवा ऐसी भाषा का प्रयोग भी मिलता है जो आम बोलचाल में सहज ही प्रयुक्त होती है। उपन्यास के पात्र मास्टर जी के घर में में अक्सर बैठक होती थी, जिसमें बहस का मुख्य मुद्दा राजनैतिक घटनाएँ थी। इस बैठक में विभिन्न घटनाओं और मुद्दों का विश्लेषण किया जाता था, जिसपर सभी अपनी-अपनी प्रतिक्रिया देते थें। आम लोगों की बहसों को उपन्यास में उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत किया है। अनवर मियाँ क़बायलियों के संबंध में कहते हैं, "ये तो वे हरामजादे जर-जोरू के चक्कर में मार खा गए। कुफ्र हो खुदा का उन दोजख के कीड़ों पर, सीधे शहर पर चढ़ आते तो, खुदा-न-खास्ता, आज हालात कुछ दूसरे ही होते।"[34] इसके साथ ही 'छिनाल', 'कंजरी' 'गू' आदि शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। उपन्यास में प्रयुक्त यह भाषा भले ही शिष्ट साहित्यिक भाषा की श्रेणी में न आए लेकिन जनसामान्य की बातचीत की शैली को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत अवश्य करती है। इस उपन्यास में संवाद को जीवंत बनाने के लिए लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया गया है। जैसे- "चोर-चोर मौसेरे भाई...टेढ़े बर्तनों के टेढ़े ढक्कन!"[35] आदि।

उपन्यास के लेखन में कोई विशिष्ट प्रायोजित कलात्मकता नहीं है बल्कि जैसा कि इसकी रचना-प्रक्रिया के संबंध में चन्द्रकान्ता स्वयं लिखती हैं, "सच तो यह है कि उपन्यास लिखने से पूर्व न इसके स्वरूप का कोई विशिष्ट ढाँचा मेरे जेहन में था, न संरचना की पूर्व नियोजित संकल्पना।...उपन्यास में कथा रस बनाए रखने की कोशिश की। थोड़े प्रयोग जरूर किए पर इतने नहीं कि रचना से जीवन गायब हो जाए और मात्र शिल्प हाथ आए।"[36] उपन्यास लेखन के दौरान चन्द्रकान्ता की प्राथमिकता इसे कलात्मक बनाने की न होकर गली की सामान्य जिंदगी को गलीवासियों की ही भाषा में सामने रखना था। इस प्रयास में उपन्यास की भाषा सहज-साधारण होती चली गई। जिसमें वर्णन, बिम्ब, कश्मीरी भाषा और लोकोक्तियों तो हैं लेकिन कोई विशेष शिल्पगत प्रयोग नहीं है।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास का शीर्षक चन्द्रकान्ता ने कश्मीर की 'वितस्ता' नदी के नाम

पर रखा है। एक ओर जहाँ 'वितस्ता' नाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कथा कश्मीर-जीवन पर केन्द्रित है वहीं दूसरी ओर उपन्यास का यह शीर्षक इस अर्थ में प्रतीकात्मक भी है कि जिस तरह नदी की प्रवृति है अनवरत बहना उसी तरह इस उपन्यास में राजनाथ का जीवन भी चलता रहता है, कई बाधाओं और दुःख को पार करते हुए। 'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास को जीवनीपरक उपन्यास की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता क्योंकि इसी उपन्यास में चन्द्रकान्ता लिखती हैं, "इस कहानी के साथ मेरे अतीत का बेहद अतरंग हिस्सा जुड़ा होने के बावजूद यह उपन्यास ही है, जीवनी नहीं...लगता है राजनाथ के बारे में सोचकर- मैंने भी अपनी कलई खोल दी है।"[37] लेकिन इस कथा के केन्द्रीय पात्र राजनाथ में चन्द्रकान्ता के पिता के जीवन और व्यक्तित्व की झलक अवश्य मिलती है।

उपन्यास में अभिव्यक्ति के लिए मुख्यत: विवरणनात्मक शैली को ही माध्यम बनाया है। जैसे, "वितस्ता के सीने पर डोलते हैं- 'दुल्हन से सजे शिकारे', 'पालदार नावें', 'पेरिस ब्यूटी', 'हनीमून', 'लव-इन-टोकियो' और वेनिस के गंडोला टाइप 'डोंगे और बाहचें'। उधर थोड़ी दूर, नदी पार, सेक्रेटेरियट के हरे मखमली बाग में खड़े हैं लंबे-ऊंचे चिनार और सफ़ेदों की कतारें! चांदनी रातों में कभी नदी पार साहिबों का दीवाना छोकरा, जो बांसुरी पर करुण राग छेड़ता है तो हरिप्रसाद चौरसिया की बांसुरी के साथ विस्मिल्लाह खान की शहनाई और अमजद अली खां का सरोद एक साथ याद आ जाते हैं। हवा के झोंकों के साथ पानी पर तैरते स्वरों का गुंफन मिली-जुली सिम्फनी से तन-मन और जेहन को अजीब सरूर से भर देता है।"[38] विवरणात्मक शैली होने के बाद भी इस उपन्यास की भाषा सीधी-सपाट नहीं है अपितु पात्रों की मन:स्थिति के चित्रण हेतु मार्मिक उदाहरणों का चुनाव भी किया गया है। राजनाथ की पत्नी गौरी की मृत्यु के बाद उनके बच्चों की मन:स्थिति का चित्रण बहुत ही सूक्ष्मता से किया गया है। गौरी का जाना उसके बच्चों के लिए ऐसा था जैसे उनके सिर से किसी ने छत छीन ली हो। इस स्थिति का चित्रण करते हुए चन्द्रकान्ता लिखती हैं, "धूप-बरखा से सुरक्षित सतरंगी शामियाने तले, खेलते खिलखिलाते

अचानक आंधी का रेला आया था और रंगीन शामियाना चिथड़ा होकर छितर गया था और नंगा बेदर्द आकाश उनके ऊपर झुक आया था।"[39]

उपन्यास में संयुक्त परिवार के विघटन और उससे उपजी पीड़ा के चित्रण के लिए 'घर' का मानवीकरण किया गया है, "वितस्ता के किनारे जो घर कभी सिर ताने तना हुआ खड़ा रहता था अपनी नितांत निजी शैली, रूप और सज्जा में, देवदार के मजबूत दरवाजों, लोहे की सांकलों और गोल कुंडोंवाला यह घर आज घरवालों के इंतजार में बूढ़ा हो गया है"[40] वह घर जहाँ कभी भरा पूरा परिवार रहता था वह एक दिन पूरी तरह खाली हो जाता है। नई पीढ़ी अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने और अपनी क्षमताओं को आजमाने के लिए कश्मीर से बाहर चली जाती है और पुरानी पीढ़ी के हिस्से बस उनका इंतज़ार आता है। नई पीढ़ी लौटना नहीं चाहती और पुरानी पीढ़ी अपना घर छोड़कर जा नहीं सकती। सबकी अपनी मजबूरियाँ हैं। दरअसल यहाँ 'घर' उन सभी बुजुर्गों का प्रतीक बन जाता है जो सारा जीवन परिवार पर न्योछावर करने के बाद भी अन्ततः अपने हिस्से में अकेलापन ही पाते हैं।

उपन्यास में भी कश्मीरी भाषा का प्रयोग मिलता है। जैसे, "हवाई जहाज आव मुलकि काश्मीर, यिमव वुछ तिमव कोर, तोबा तकसीर (हवाई जहाज मुल्क काश्मीर में जब पहली बार आया तो लोगों ने इस अजूबी चिड़िया को देखकर तौबा की।)"[41]

व्यक्तित्व विश्लेषण, मार्मिक उदाहरणों और कश्मीरी भाषा को माध्यम बनाकर रचे गए इस उपन्यास की कथा भी वितस्ता की तरह अनवरत-अविरल बहती रहती है। भाषा की जटिलता और अभिव्यक्ति की बोझिलता से दूर राजनाथ के जीवन को केंद्र में रखकर चन्द्रकान्ता ने इस उपन्यास में कश्मीरी पंडित समाज को उसकी जटिलताओं, कमियों और खूबियों के साथ प्रस्तुत किया है।

'पाषाण युग' उपन्यास अपने कलेवर में काफी छोटा उपन्यास है। इसे लघु उपन्यास भी कहा जा

सकता है। इस उपन्यास का शीर्षक 'पाषाण युग' रखने का कारण संजना कौल के अनुसार, "यह प्रस्तर युग नहीं था। उससे भी आगे बढ़ी हुई अवस्था थी। पत्थर की कुल्हाड़ी बहुत पीछे छूट चुकी थी। यह इस जगमग करती हुई दुनिया की वह तहजीब थी जहां आदमी नए-नए हथियारों पर पॉलिश करना सीख गया था, उन्हें इस्तेमाल कर रहा था।"[42] उपन्यास का यह शीर्षक कश्मीर के उस दौर का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ मनुष्य 'पाषाण युग' को पार कर आधुनिक युग में तो आ गया है लेकिन वह बर्बर मनोवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाया है। हर नए आविष्कार के साथ उसकी संवेदनाएं पत्थर बनती जा रही हैं, जिसपर किसी की पीड़ा अथवा मौत का भी कोई असर नहीं होता है।

संजना कौल ने इस उपन्यास में कश्मीरियों के भय का चित्रण के लिए मैना के भय को माध्यम बनाया है। उपन्यास का आरंभ घोसले से एक मैना के बच्चे के गिरने से होता है, जो गिरने के बाद डर की वजह से स्कूटर के पीछे छिपा रहता है। थोड़ी देर बाद अंजलि देखती है कि वह बच्चा अपनी जगह पर नहीं है। अंजलि सोचती है पता नहीं उसे बिल्ली खा गई या कौवा ले गया तभी अचानक उसे यह महसूस होता है कि कश्मीरियों विशेषकर कश्मीरी पंडितों की स्थिति भी उसी मैना के उसी बच्चे की तरह हो गई है, "लोग भी तो इसी तरह गायब हो रहे थे। कहीं अपहरण, कहीं गोलियां तो कभी पूरे परिवार की ही हत्या।"[43]

यहाँ मैना के बच्चे का भय दरअसल प्रतीकात्मक रूप से कश्मीरियों की उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ वे हर पल इसी भय में जीते हैं कि न जाने कब कौन आएगा और उनकी हत्या कर देगा। इस उपन्यासों में नारों का भी प्रयोग किया गया है। दरअसल पंडितों के भय को बढ़ाने में वे नारें भी कारक बने थे जो कश्मीरी पंडितों के विरुद्ध लगाए जाने लगे थे। "हम क्या चाहते हैं-आज़ादी। /भारती ' कुत्तो- वापस जाओ। /इस्लाम-ज़िंदाबाद।"[44]

'पाषाण युग' उपन्यास की कथा एक क्रम में चलती है। इस उपन्यास में शिल्पगत वैविध्य तो

अधिक नहीं है लेकिन संजना कौल ने पत्र, संवाद, एकालाप और वर्णन के माध्यम से कश्मीर में बढ़ती हिंसा, बिगड़ते संबंध और बदलती परिस्थितियों का चित्रण किया है।

'इक़बाल' उपन्यास का शीर्षक उपन्यास के पात्र 'इक़बाल' के नाम पर ही रखा गया है। उपन्यास में मुख्यत: दो शैलियों- 'मैं' और 'संवाद' को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है, जिसमें 'मैं' जिया है। उपन्यास में जिया और इक़बाल के संवादों के माध्यम से दो अलग-अलग विचारों को सामने रखा गया है। जहाँ वे दोनों ही अपने पक्ष को सही साबित करने के लिए बहस करते हैं, तर्क करते हैं। इस उपन्यास में संवाद का माध्यम 'फेसबुक चैट' को भी बनाया गया है। जैसे, "इक़बाल से मेरा परिचय पहले पहल फेसबुक पर हुआ था एक फ्रेंडशिप रिक्वेस्ट अंग्रेजी में वांट टू बी फ्रेंड एनी स्कोप?...उसके बाद जब भी फेसबुक पर जाती वह चैट के लिए हाजिर हो जाता हाय मैम कैसी हैं?"[45]

उपन्यास में जिया और इक़बाल दो विपरीत विचारधाराओं वाले चरित्र होने के बावजूद भी एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। जहाँ उन दोनों के निजी संवाद हैं वहाँ उपन्यास की भाषा रूमानियत-भरी हो जाती है। जैसे, "मैं उसकी बातों पर ध्यान देने की कोशिश कर रही थी, मगर मेरा ध्यान बार-बार उसके जिस्म से उठती आज़ारो की मादक गंध की ओर खींच रहा था।...जब मैंने उससे कहा था मुझे आज़ारो की महक पसंद है, उसने शरारत से पूछा था, 'महक को महसूस करने के लिए तो पास आना पड़ता है...क्यों, पास आने दीजिएगा?' "[46] लेकिन वे दोनों अपनी-अपनी परिस्थितियों से परिचित हैं। वे इस बात को भी समझते हैं कि उनका मिलना आसान नहीं है और जैसे ही उन्हें इस बात का एहसास होता है उपन्यास की भाषा प्रतीकात्मक हो जाती है और जिया सोचती है, "हमें साथ चलना था, मगर नदी के दो किनारों की तरह फासले से— बीच में एक पूरी दुनिया थी, अपने तमाम कायदे-कानूनों के साथ..."[47] नदीं के दो किनारे इक़बाल और जिया हैं जो साथ-साथ चलते हुए भी मिल नहीं पाते।

उपन्यास में कश्मीर के सौंदर्य के चित्रण के दौरान भाषा बिम्बात्मक हो जाती है। जैसे, "सामने की नीली पहाड़ियों के माथे पर पड़ती धूप बर्फ़ में प्रतिबिंबित होकर हीरे की तरह दमक रही है। बसंत की हल्की मीठी हवा बादामों के फूलों की भीनी महक से तर है। चीड़ों की डालों पर रेशम-से कढ़ी है कुदरत की फुलकारी!"[48] लेकिन उपन्यास में केवल सौन्दर्य का बिम्ब ही नहीं उभारा गया है बल्कि रूपकों के प्रयोग द्वारा कश्मीर के सौन्दर्य के पीछे छुपे यथार्थ को भी दिखाया गया है जहाँ बर्फ भी कभी-कभी कफ़न का रूप ले लेती है। मुज्तबा जिया से कहता है, "आप लोगों के लिए कश्मीर जन्नत है, ख़्वाब है। मगर...पता है ठंड के दिन यहां क़यामत जैसे होते हैं। चारों तरफ बर्फ ही बर्फ- जैसे पूरी कायनात कफ़न में लिपटी हुई है। आसमान भी ग्रे...।...लाशों में तब्दील हो जाते हैं हम।...कांगड़ी के इर्द-गिर्द सिकुड़े, सिमटे हुए, छोटी-छोटी सहूलियतों से महरूम और मोहताज़!"[49]

कश्मीर के सौन्दर्य की चर्चा तो हमेशा होती है लेकिन कश्मीर की जो बर्फ सैलानियों के लिए आकर्षण का केंद्र है, उसकी अधिकता कश्मीर को कफ़न की तरह ढक लेती है और लोग मूलभूत ज़रूरतों को भी पूरा नहीं कर पाते हैं। इस उपन्यास में कई कथाएं नहीं है बल्कि जिया और इक़बाल की कथा के माध्यम से प्रेम के अंतर्द्वंद और कश्मीर के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। ज्योतिष जोशी इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "जयश्री की औपन्यासिक शिल्प की विशेषता यह है कि वे उपन्यास में समानांतर कथाओं को गूंथने से बचती हैं। एक सीधी कथा; पर केन्द्रीय वस्तु को भेदकर उसे समग्रता में अंकित करना उनका वैशिष्ट्य है।"[50]

'नौशीन' कश्मीर में पहली बर्फ पड़ने पर मनाया जानेवाला त्यौहार है जो उल्लास और नई उम्मीदों का प्रतीक है। 'नौशीन' उपन्यास का शीर्षक भी इसी उम्मीद पर रखा गया है कि एक दिन कश्मीर में सब ठीक हो जाएगा और उस दिन कश्मीर की बर्फ केवल सफ़ेद होगी उसमें खून के धब्बें नहीं होंगे। जैसा कि इम्तियाज़ अपनी बहन हसीना को पत्र में लिखता है, "आज पहली बर्फ़ गिरी है। हर तरफ़ से 'नौशीन मुबारिक, नौशीन मुबारिक' की आवाज़ आ रही है।...उम्मीद पर

दुनिया क़ायम है। काश्मीर की पहली बर्फ़ में लगता है इस बार खून के छींटे कुछ कम हैं। ख़ुदा ने चाहा तो अगले साल बिल्कुल न होंगे। आमीन!"[51]

उपन्यास के केंद्र में हसीना है जो मुंबई में रहती है। हसीना, इम्तियाज़, अरुंधति, फरहाद आदि के संवादों, प्राप्त सूचनाओं, पत्रों और स्मृतियों के माध्यम से ही कश्मीर की बिगड़ती परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।

उपन्यास में पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, जिसके माध्यम से केवल बेहतर की उम्मीद ही नहीं व्यक्त की गई है बल्कि कश्मीरी युवाओं की उन परिस्थितियों का भी चित्रण हैं जहाँ उन्हें दहशतगर्द बनाने के लिए सब्जबाग दिखाए जाते हैं, लेकिन जब वे यथार्थ से अवगत होते हैं तब तक बहुत देर हो जाती है। इश्तियाक़ अपने अब्बा को पत्र लिखकर अपनी इसी स्थिति से उन्हें अवगत कराता है, "जान तो बच गयी है, पर मेरा मुस्तक़बिल क्या है, वो मन नहीं जानता। अगर सिरीनगर में आकर डलगेट में खड़े अपने हाउसबोट पर नहीं रह सकता तो ज़िन्दा रहने का क्या फ़ायदा है। पर अब्बू, अब इस उम्मीद पर ज़िन्दा रहूँगा कि शायद कभी काश्मीर आ सँकू। मेरे लिए दुआ कीजिए। अम्मी की कहिए, मुझे माफ़ कर दें।...आपका बेटा, इश्तियाक़।"[52]

उपन्यास में विवरणनात्मक शैली का प्रयोग भी हुआ है, जैसे- "तीन बैडरूम्स का उसका यह फ़्लैट बंबई के लिहाज़ से खूब बड़ा फ्लैट है। एक बैडरूम उसका और फ़रहाद का, एक बच्चों का और एक मेहमानों का। मेहमानों के बैडरूम में उसने एक बड़ी-सी अलमारी बनवाई है। इस अलमारी में धोबी की धुली नई चद्दरें, तकिए, कंबल, तौलिए सब कुछ है। एक ड्राअर में नई टुथब्रश, साबुन, तेल, डिटोल, रुई सब पड़ा है। ऊपर नीचे मेहमानों के कपड़े रखने के लिए कई दराज़।"[53]

उपन्यास की कथा वर्तमान और अतीत में साथ-साथ चलती है। हसीना की यादों के सहारे कथा बार-बार अतीत में जाती है। जहाँ वह कश्मीर में अपने पिता के घर बिताये हुए दिनों को याद

करती है, "हसीना ने हार हाथ में लेकर सीधा किया तो वह शाम उसके सामने आकर खड़ी हो गयी, जब उसकी खाला ने एक हार दिखाते हुए अम्मी से कहा था- माशाअल्लाह, हसीना जवान हो रही है। कुछ न कुछ बनाकर रखती रहो। शालवालों के घर किसी चीज़ की कमी नहीं है, पर ये हार एकदम नये डिज़ाइन का है।...मैं सर्राफ से तुम्हें दिखाने लाई हूँ। देखो, हसीना कैसे देख रही है। बच्ची, शादी के बाद मिलेगा।"[54]

उपन्यास में पात्रों के आपसी संवाद के लिए कश्मीरी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। यहाँ हसीना और इम्तियाज के संवाद का उदाहरण देखा जा सकता है, "लड़का 'हुस्स टट्टी'(हसीना बहन) कहकर उसके गले से लगकर रोते-रोते ही कहने लगा, हुस्स टट्टी ब छुस चोन इम्तियाज़। (मैं तुम्हारा इम्तियाज़ हूँ)"[55]

'नरमेध' उपन्यास का शीर्षक कश्मीर में होती हिंसा और हत्या को आधार बनाकर रखा गया है। 'नरमेध' का अर्थ होता है मानव की सामूहिक हत्या। 'मानक हिंदी कोश' में 'नरमेध' के दो अर्थ बताए गए हैं- "१ प्राचीन काल में होनेवाल एक प्रकार का यज्ञ जिसमें मनुष्य के मांस की आहुति दी जाती थी। २ बहुत अधिक मनुष्यों का प्राय एक साथ होनेवाला संहार या हत्या।"[56] मनमोहन सहगल कश्मीर में हुई हत्याओं की तुलना 'नरमेध' से करते हैं क्योंकि यदि कश्मीर के संदर्भ में इस शब्द को देखे तो कश्मीर की भूमि पर मानव की बलि चढ़ती ही जा रही है, इसका अंत कब होगा यह कोई नहीं जानता।

'नरमेध' उपन्यास का आरंभ कैम्प से होता है। उपन्यास का पात्र नरेंद्र विस्थापित कश्मीरी पंडित है और अपने परिवार को खोने के बाद अपने चाचाजी के साथ कैम्प में रहता है। इस दौरान वह अपनी स्मृतियों के सहारे बार-बार कश्मीर लौटता है और उसके अतीत को आधार बनाकर कश्मीरी पंडितों की कश्मीर से कैम्प की यात्रा का चित्रण किया गया है।

उपन्यास में राजनैतिक घटनाओं का चित्रण भी विस्तार से किया गया है। इस चित्रण के दौरान

उपन्यास की भाषा अधिकांशत: विवरणनात्मक हो जाती है। जैसे, नरेंद्र के चाचाजी भारत की आज़ादी के बाद कश्मीर की स्थिति का विवरण इस प्रकार देते हैं, "सन 1947 में अंग्रेज़ों ने भारत को आजाद कर दिया। साथ ही उन्होंने अपनी कूटनीति का परिचय देते हुए भारत की सभी देशी रियासतों को भी स्वतन्त्रता दे दी, वे अपनी इच्छा से भारत के साथ रहे, अलग से अपनी खिचड़ी पकाते रहें, या विभाजित भारत के अंग पाकिस्तान के साथ रहना पसंद करें, यह निर्णय उन्हीं पर छोड़ दिया गया। कश्मीरी नेतृत्व उस समय स्वतंत्र कश्मीर घाटी के राज्य के रूप में रहना चाहता था-भारत और पाकिस्तान, दोनों देशों के मित्र के रूप में।"[57]

'नरमेध' मुख्यत: वर्णनात्मक और पूर्वदीप्त शैली के प्रयोग द्वारा सीधी-सपाट भाषा में लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में राजनैतिक घटनाओं और भारत पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध का विस्तृत विवरण कथा को कभी-कभी बोझिल भी बना देता है।

मधु कांकरिया के उपन्यास 'सूखते चिनार' का शीर्षक प्रतीकात्मक है। चिनार के वृक्ष कश्मीर की पहचान हैं और वृक्ष जीवन का प्रतीक होता है। इस उपन्यास के शीर्षक में ही चिनार के वृक्ष के सूखने की बात कही गई है। जिसका प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि वह कश्मीर जो प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है उसमें रहनेवाले जनसामान्य का जीवन धीरे-धीरे मुरझा रहा है।

'सूखते चिनार' उपन्यास में कथा की शुरुआत 'फ्लैश बैक' से होती है। जहाँ सन्दीप अपने मेजर सन्दीप बनने की पूरी प्रक्रिया को याद करते हैं। 15 वर्षों का जीवन, आर्मी में आने के लिए परिवार का विरोध, शपथ लेते समय गौरव की अनुभूति होना, मार्ग में आनेवाली कठिनाइयाँ यह सब उनकी आँखों के सामने किसी चलचित्र की तरह चलता रहता है। तभी 'मोबाइल' में आये मैसेज से उनका ध्यान टूटता है और वह अतीत से वर्तमान में आ जाते हैं और सोचते हैं, "कितनी दूर तक चले गए थे वे। पिछले 15 वर्षों में जाने कितनी बार ज़ेहन से गुज़र चुकी है वह शपथ जिसे उन्होंने तब ली थी जब वे महज़ 18 वर्ष के थे।"[58]

उपन्यास में भाषागत विविधताओं को भी देखा जा सकता है। उपन्यास में बांग्ला, अंग्रेजी और कश्मीरी भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। इन भाषाओं का प्रयोग न केवल संवाद में सजीवता और स्थानीयता बनाये रखने के लिए किया गया है, अपितु पात्रों की पृष्ठभूमि बताने के लिए भी किया गया है। जैसे, सिद्धार्थ जब अपनी घरेलू सहायिका से 'फाइन ऐंड लवली' क्रीम के बारे में पूछता है तो वह बांग्ला भाषा में जवाब देती हुई कहती है, "कि बोलछेन, आमि व्यवहार ओ करी। ना सब समय ना शुद्धु पूजार समय।"[59] वहीं जहाँ 'मोबाइल' में सूचनाओं की बात आती है वहाँ भाषा अंग्रेजी हो जाती है, जैसे- Rajouri to Pahalgam police, 31RR 62 RR & 4 para in a joint operation killed 2 militants between saipathri & Ardwas area in the hills of SHOPIAN (INAM-UN-NABI)"[60] और मेज़र सन्दीप जब एक कश्मीरी से पूछताछ करते हैं तो वह संवाद के लिए कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया गया है। जैसे, "कड़कती आवाज़ में मेज़र सन्दीप ने ज़मील के अब्बू से पूछा, वन से कछी, छुई नेहू (बता, तेरा बेटा कहाँ है?)...ज़मील के अब्बू ने जवाब दिया, मैं छुन पता। (मुझे नहीं पता!)"[61]

उपन्यास में कई स्थानों पर सांकेतिक भाषा देखने मिलती है जहाँ किसी घटना या स्थिति का वर्णन न कर संवाद अथवा वाक्यों में 'डॉट-डॉट-डॉट' का प्रयोग कर यह पाठकों पर छोड़ दिया गया है कि वे इसका क्या अर्थ ग्रहण करते हैं। जैसे- "हे भगवान तो क्या भाई किसी ऑपरेशन में...?"[62] यहाँ सिद्धार्थ अपने भाई मेज़र सन्दीप की कोई खबर न मिलने की स्थिति में किसी अनिष्ट की आशंका से भयभीत हो जाता है। उसके भय का अंदाज़ा उसके अधूरे संवाद के माध्यम से लगाया जा सकता है, जहाँ वह अपने इस भय को शब्द भी नहीं दे पाता है।

उपन्यास में पत्र, आत्मालाप, 'इमेल' और 'मैसेज' को भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है। इन सबका प्रयोग पात्रों की मन:स्थिति और परिस्थिति को दिखाने के लिए किया गया है। जहाँ मेजर सन्दीप के आत्मालाप में सैनिक जीवन की जटिलताएं दिखती हैं, "हमारे ऊपर भी मानवाधिकार की कटार लटकी हुई है। हमारे जवान और अफ़सर यदि थूकते भी हैं तो

मानवाधिकार आयोग द्वारा तुरंत कटघरे में बन्द कर दिये जाते हैं।"[63] वहीं रूबीना पत्र के माध्यम से उसकी मन:स्थति को 'मैं' शैली में चित्रित किया गया है, "मैंने ज़िन्दगी को समझने में भारी भूल की।...कश्मीर की आज़ादी को, इस्लाम को सबकुछ को मैंने समझने में भारी भूल की।"[64]

उपन्यास में पत्र और आत्मालाप शैली का प्रयोग केवल शैलीगत भिन्नता के लिए नहीं बल्कि अभिव्यक्ति को जीवंत और प्रभावी बनाने के लिए किया गया है। पत्रात्मक शैली की यह विशेषता होती है कि इसमें पात्रों को पूरा स्थान मिलता है अपनी बातों को बिना किसी व्यवधान के कहने का। यह शैली आत्मालाप से इस अर्थ में भिन्न होती है कि इसमें किसी पात्र की मन:स्थिति से सिर्फ पाठक ही नहीं बल्कि वह पात्र भी अवगत होता है जिसे पत्र लिखा गया है। यहाँ मधु कांकरिया ने रूबीना की मन:स्थिति को सन्दीप तक पहुंचाने के लिए पत्र शैली को माध्यम बनाया है। वहीं मेजर सन्दीप जिन परिस्थितियों में है वहाँ उसे स्वयं से लड़ना है। युद्ध और बुद्ध में से किसी एक का चयन अपने विवेक और तर्कों के आधार पर करना है, इसलिए मेजर सन्दीप के लिए आत्मालाप शैली का चयन किया गया है। सन्दीप के भाई सिद्धार्थ ने आधुनिक जीवन शैली से उपजी समस्या को बताने के लिए'ई मेल' का सहारा लिया है। वह अपनी पत्नी की स्थिति बताते हुए सन्दीप को 'ई मेल' करता है, "डाक्टर ने फिर सहानुभूति से मुझे देखते हुए कहा, अत्यधिक कृत्रिम और तेज़ जीवन शैली के चलते तीस वर्ष की उम्र में ही इन्हें 'मीनोपॉज' हो गया है।"[65] सेना से जुड़ी सूचनाएं 'मैसेज' के माध्यम से मिलती हैं।

'सूखते चिनार' उपन्यास में भाषा कई बार परिवेश और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। पैसे और मुनाफे की बढ़ती महत्ता ने मानवीय संबंधों को बुरी तरह प्रभावित किया है। यह आधुनिक जीवन की जटिलता ही है कि मनुष्य जिसके लिए सबसे अधिक मेहनत करता है, धन जोड़ता है उससे ही दूर होता जाता है। सन्दीप और उसके पिता के आपसी रिश्तों में आई दूरियों को उपन्यास में इस प्रकार चित्रित किया गया है, "जवाब सुन दंग रह गये शेखरबाबू। भीतर का सूर्य डूबने लगा। डूबती आँखों से फिर देखा पुत्र को-क्या यही उनका बेटा है? अपना खून! क्या

सचमुच उनसे कोई भूल हुई? क्योंकि समझ ही नहीं पाये बेटों को? वे दिन-पर- दिन अपने व्यापार में गहरे धँसते गये, उनके लिए वित्त सत्य ही जीवन-सत्य बनता गया और बेटा उनके गुरुत्वाकर्षण से छिटक लहर की तरह दूर होता गया उनसे।"[66]

उपन्यास में मधु कांकरिया जब कश्मीर की दो विपरीत परिस्थितियों को दिखाती हैं तो शैली तुलनात्मक हो जाती है। जैसे, "कहीं गुलाब, कहीं चिनार, कहीं चीड़, कहीं दुधिया बादल कहीं चश्मे तो कहीं झेलम वैसे ही यहाँ जगह-जगह कहीं हिंसा, कहीं नफ़रत कहीं शक तो कहीं ख़ून खराबा और नफ़रत की बारूद बिछी हुई है।"[67] कश्मीर की प्रकृति और परिस्थिति के बीच यह विरोधाभास है कि कश्मीर में एक ओर जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य है वहीं उसके ठीक विपरीत हिंसात्मक माहौल भी है। गुलाब के फूल और गोलियों के कारण बहते रक्त का रंग भले एक हो, लेकिन एक आकर्षक है, दृष्टि को मोहता है, वहीं दूसरा जीवन के उस क्रूर यथार्थ से परिचय कराता है। जहाँ जीवन और मृत्यु के बीच बस इतना ही फासला है कि पहली गोली कौन चलाएगा। यह तुलना कश्मीर के उस क्रूर यथार्थ को सामने लाती है जहाँ कश्मीर को प्रकृति ने जितना सवांरा है मनुष्य ने उसे उतना ही बर्बाद किया है। खूबसूरत वादियां और हिंसात्मक वातावण ही अब कश्मीर की नियति है।

उपन्यास में मधु कांकरिया ने किसी बात को सीधे-सीधे न कहकर विशेष तरीके से कहने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जिसका एक उदहारण है, "जो दिखता है, वही बिकता है।"[68] का प्रयोग बाजारवादी मानसिकता को दिखाने के लिए किया गया है।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी 'दर्दपुर' उपन्यास के शीर्षक के संबंध में लिखते हैं, "कृति का शीर्षक 'दर्दपुर' अत्यंत सार्थक है। कश्मीर के विस्थापितों का दर्द इस उपन्यास में साकार हो उठा है। यह उपन्यास एक दमित और विस्थापित हिन्दू मानस द्वारा कश्मीर के जीवन और अमानवीय होते जाते यथार्थ को खोलने समझने की कोशिश बन जाता है।"[69] उपन्यास का यह शीर्षक सही अर्थों

में पूरी कथा का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास की केन्द्रीय चरित्र सुधा कश्मीर से जिस दर्द को अपने साथ लेकर विस्थापित होती है वह कश्मीर से बाहर जाकर भी और कश्मीर लौटने के बाद भी उसके भीतर बना रहता है, क्योंकि यह पीड़ा सुधा जैसे तमाम विस्थापितों के जीवन में उनके इस तरह घुल गई है कि उससे मुक्ति कहीं भी रहकर संभव नहीं है।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी इस उपन्यास की शैली के संबंध में लिखते हैं, "यह लेखिका क्षमा कौल का आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास की नायिका सुधा उपन्यास की लेखिका भी है।"[70] उपन्यास की कथा सुधा के माध्यम से ही चलती है और उपन्यास के सभी पात्र उसके इर्द-गिर्द ही घूमते रहते हैं। चूँकि सुधा कश्मीरी विस्थापित है और जब वह दुबारा कश्मीर लौटती है तो वह अकेली नहीं होती है बल्कि यादों का अंबार उसके साथ होता है जो उसे बार-बार अतीत में ले जाता है। वर्तमान से अतीत की ओर चलते हुए कथा कभी-कभी वर्णनात्मक भी हो जाती है जैसे- "आफताब जू मेरे चाचा मुझे सान्त्वना देने की कोशिश कर रहे थे। समझा रहे थे कि टाठा स्वर्ग लोक सिधार गये हैं। अब वह वापस नहीं आएँगे। पर चाची और बुआ को आफताब जू ने गणपतियार और नयी सड़क वाले शरणार्थी शिविर बनी धर्मशालाओं में खूब ढूँढ़ा था, पर नहीं मिलीं। सारी रजिस्टरें भी जँचवायीं।...फिर पता चला कि श्रीनगर में कुछ विद्यालयों को भी शरणार्थी शिविरों में बदल दिया गया है। स्कूलों की छुट्टी की गयी है।"[71]

उपन्यास में व्यंजनात्मक भाषा का प्रयोग भी देखने मिलता है। जहाँ क्षमा कौल लकड़ी की स्थिति के माध्यम से स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को दिखाती हैं। जैसे, "लकड़ी से नहीं पूछा जाता है कि वह किसकी है? या क्या उसे जलाया जाना चाहिए या नहीं...या क्या वह जलाया जाना पसंद करेंगी या नहीं। उसे ज्यों ही मौका मिले, लूटा जाता है, जलाया जाता है। गर्माया जाता है खुद को आनंद विभोर किया जाता है खुद को...ठीक स्त्रियों की तरह।"[72] यहाँ लकड़ी से स्त्रियों की यह तुलना परंपरागत उदाहरणों से बिल्कुल अलग है। इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए लकड़ी का उदाहरण समाज में स्त्री की उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ उसका केवल उपयोग एवं

उपभोग ही किया जाता है।

क्षमा कौल इस उपन्यास में जब कश्मीर के सौन्दर्य का वर्णन करती हैं तो उनकी भाषा बिम्बात्मक हो जाती है जैसे, "मानों पहाड़ न होकर मिट्टी के बताशें हों। सुमधुर मिट्टी। गुड़ जैसी मिट्टी। क्या ऐसी मिट्टी इस पृथ्वी के किसी अन्य टुकड़े की होगी? नहीं हो सकती।"[73] 'मिट्टी के बताशों' से पहाड़ का बिम्ब बनाना एक नवीन प्रयोग है।

इस उपन्यास में कश्मीरी गीतों का प्रयोग भी किया गया है जिससे उपन्यास की भाषा काव्यात्मक भी हो गई है। जैसे, "खति मंज़ द्रायि मति बाये लोलो/ दूरन मारान ग्राये लोलो/ राजरानी कोडनास पाये लोलो/ माधव जू छु रोज़ान छाये लोलो/ प्रसाद जू विन सुरिसत ज़ाये लोलो/ अमरावती बेपरवाये लोलो/ खति मंज़ कअड् राज़दान बाये लोलो/ राजरानी कोडसन पाये लोलो.../दूरन छि मारान ग्राये लोलो... काल कोठरी से मत्तुओं की बाई निकली। झुमके झलकाती। राजरानी ने उसका पता पाया। माधवजू खुद को परछाइयों में छिपाता है, और अमरावती प्रसादजू के बच्चों को जनती है...अमरावती मस्त है...बेपरवाह है...काल कोठरी से राज़दानों की बाई राजरानी ने उसका पता लगाया"[74] गीतों के माध्यम से जहाँ कश्मीरी जन-जीवन को जीवन्तता से प्रस्तुत किया गया है वही कश्मीरी भाषा के शब्द उपन्यास में स्थानीयता का पुट देते हैं।

कश्मीर केन्द्रित हिंदी उपन्यास विषय की दृष्टि से लगभग समान होते हुए भी शिल्पगत दृष्टि से अलग पहचान रखते हैं। अधिकांश उपन्यासों की कथा वर्तमान से अतीत की ओर यात्रा करती है। इस यात्रा के दौरान वर्तमान में कश्मीरियों की स्थिति और अतीत में छुपे उसके कारणों का विश्लेषण किया गया है। वहीं दूसरी ओर पात्रों की सामाजिक एवं मानसिक स्थिति के अनुसार ब्लॉग, पत्र, 'फेसबुक चैट', 'मैसेज', 'ई मेल', लोककथा, काव्य, आत्मालाप, बहस और डायरी आदि के प्रयोग से उपन्यासों की अलग पहचान भी बनती है।

किसी उपन्यास की रचना-प्रक्रिया में भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जैसा कि राजेन्द्र यादव

लिखते हैं, "कथा या साहित्य के संदर्भ में भाषा की बात किसी भी कोण और धरातल से शुरू की जाए, वह जिंदगी और यथार्थ पर ही आकर टिकती है, क्योंकि उसी से हम जिंदगी को जीते, समझते और अभिव्यक्ति देते हैं।"[75] कोई उपन्यास कितना प्रभावी है यह उसकी विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति और प्रस्तुति पर निर्भर करता है लेकिन उपन्यास कितना सम्प्रेषणीय है यह उसकी भाषा पर निर्भर करता है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है लेकिन यह अभिव्यक्ति तभी सफल होती है जब वह स्थान, समय, पात्रों, मनोभावों, परिस्थितियों और घटनाओं के अनुकूल हो। भाषा का यही गुण उपन्यास को सफल बनाता है। कश्मीर केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में स्थानीयता को बनाए रखने के लिए कश्मीरी भाषा, उस भाषा के लोकगीतों, लोककथाओं एवं मुहावरों का प्रयोग किया गया है जिसके माध्यम से कश्मीर कथा में अपनी पूरी उपस्थिति दर्ज कराता है। कश्मीरी भाषा के शब्दों द्वारा उपन्यास स्थानीय जीवन से अपनी घनिष्टता सिद्ध करते हैं। उपन्यासों में पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा उनकी सामाजिक स्थिति, मन:स्थिति और प्रसंगों के अनुकूल है। हिंदी उपन्यासों में कश्मीरी भाषा का प्रयोग नवीनता का सूचक है। उपन्यासकार इस सत्य के प्रति सचेतन है कि कश्मीरी भाषा से पाठकों की अनभिज्ञता संप्रेषण में कठिनाई उत्पन्न कर सकती है, इसलिए उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में प्रयुक्त कश्मीरी भाषा का शाब्दिक और भावानुवाद भी किया है, जिससे स्थानीयता और सम्प्रेषणशीलता दोनों बनी रहे। उपन्यासों में प्रयुक्त कश्मीरी भाषा उपन्यासों को आंचलिक रंग देने के साथ ही कश्मीर की उस जातीय पहचान को भी प्रस्तुत करती है जहाँ भाषागत एकता तमाम भेदों को मिटा देती है।

संदर्भ:

1. एल्ड्रिज, जॉन डब्ल्यू (1952) (सं.), क्रिटिक्स एंड एसे ऑन माडर्न फिक्शन, रोनाल्ड प्रेस कंपनी, न्यूयॉर्क,
2. गुप्त, शांतिस्वरूप (1980), उपन्यास: स्वरूप, संरचना तथा शिल्प, अलंकार प्रकाशन, प्राक्कथन
3. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, फ्लैप से
4. वही, पृष्ठ 13
5. भारद्वाज, नंद (अप्रैल-जून 2013), आलोचना, पृष्ठ 96
6. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010), शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 94
7. वही, पृष्ठ 216
8. वही, पृष्ठ 185
9. वही, पृष्ठ 127
10. वही, पृष्ठ 18
11. वही, पृष्ठ 123
12. कांत, मीरा (2009), एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 168-169
13. मधुरेश, (जुलाई-सितम्बर 2012) समीक्षा, पृष्ठ, 12
14. कांत, मीरा (2009), एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 203
15. वही, पृष्ठ 226
16. वही, पृष्ठ 130
17. वही, पृष्ठ 53

18. वही, पृष्ठ 52

19. वही, पृष्ठ 87

20. वही, पृष्ठ 130

21. चन्द्रकान्ता (2002), कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ ix

22. वही, पृष्ठ 238-239

23. वही, पृष्ठ 471

24. वही, पृष्ठ 263

25. चन्द्रकान्ता (2008), मेरे भोजपत्र, अरु प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 74

26. चन्द्रकान्ता (2002), कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 588

27. वही, पृष्ठ 62

28. वही, पृष्ठ 94

29. वही, पृष्ठ 325

30. चन्द्रकान्ता (1984), ऐलान गली ज़िन्दा है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 19

31. वही, पृष्ठ 15

32. वही, पृष्ठ 11

33. वही, पृष्ठ 79

34. वही, पृष्ठ 43

35. वही, पृष्ठ 28

36. सिंह, नामवर, (सं.) (2010), आधुनिक हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 195

37. चन्द्रकान्ता (1992), यहाँ वितस्ता बहती है, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली vii

38. वही, पृष्ठ 2

39. वही, पृष्ठ 98

40. वही, पृष्ठ 175

41. वही, पृष्ठ 33

42. कौल, संजना (1998), पाषाण युग, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 73-74

43. वही, पृष्ठ 7

44. वही, पृष्ठ 59

45. राय, जयश्री (2014), इक़बाल, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 7

46. वही, पृष्ठ 19

47. वही, पृष्ठ 14

48. वही, पृष्ठ 17

49. वही, पृष्ठ 60-61

50. जोशी, ज्योतिष (2019), कथा विचार, विजया बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ 80

51. सचदेव, पद्मा (1995), नौशीन, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 181-182

52. वही, पृष्ठ 172

53. वही, पृष्ठ 7

54. वही, पृष्ठ 14

55. वही, पृष्ठ पृष्ठ- 8

56. वर्मा, रामचंद्र, (1964) (सं.) मानक हिंदी कोश (खंड-3), हिंदी साहित्य सम्मलेन, पृष्ठ 218

57. सहगल, मनमोहन (1986), नरमेध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 13

58. कांकरिया, मधु (2012), सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 35

59. वही, पृष्ठ 67

60. वही, पृष्ठ 35

61. वही, पृष्ठ 102

62. वही, पृष्ठ 67

63. वही, पृष्ठ 117

64. वही, पृष्ठ 131-132

65. वही, पृष्ठ 128

66. वही, पृष्ठ 43

67. वही, पृष्ठ 47

68. वही, पृष्ठ 50

69. तिवारी, रामचंद्र (2016), हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 349

70. वही, पृष्ठ 348-349

71. कौल, क्षमा (2004), दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 51

72. वही, पृष्ठ 22

73. वही, पृष्ठ 211

74. वही, पृष्ठ 298

75. यादव, राजेन्द्र (1977), कहानी स्वरूप और संवेदना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 65